के दो मंजिला मकान में ले आए।

भारतीय इतिहास में जिस बात के लिए दण्डी स्वामी जी को बुद्धिवादी मनीषी सदा स्मरण करते रहेंगे, वह बात यह है कि उन्होंने आर्ष-अनार्ष ग्रन्थों को न केवल चिन्हित किया बल्कि अनार्ष ग्रन्थों को त्यागने और आर्ष ग्रन्थों को अपनाने का प्रबल आधार प्रस्तुत किया। इसी के पठन-पाठन हेतु उन्होंने पाठशाला की स्थापना की तथा अपना पूरा जीवन इसके लिए समर्पित कर दिया। वे पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रक्रम को सर्वोत्तम मानते थे। वे अपने विद्यार्थियों को महाभाष्य एवं अष्टाध्यायी का अध्ययन कराते थे। ज्यों-ज्यों उन्होंने इन ग्रन्थों का और अधिक मनन एवं चिन्तन किया त्यों-त्यों उनकी श्रद्धा और अधिक प्रगाढ़ होती चली गई। दण्डीजी ने एक श्लोक की रचना भी की-

अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
ततोऽन्यत् पुस्तकं यत्तु तत्सर्व धूर्तचेष्टितम्।।

अर्थात् अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य ही व्याकरण की दो पुस्तके है। इनसे अन्य जो पुस्तकें (कौमुदी आदि) हैं, वे सब धूर्तो की चेष्टाएं हैं। भट्टोजी दीक्षित के कौमुदी सिद्धान्त को वे उपयुक्त नहीं मानते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था-भट्टोजी मूर्ख था। वह इस पवित्र भारतभूमि पर एक धूर्त हुआ है जिसने जिज्ञासुओं को ऋषियों के मार्ग से हटाकर अपने तथा अपने गुरू रामचन्द्र दीक्षित के पीछे चलाने का कुकृत्य किया। उन्होंने अष्टाध्यायी को आर्ष और कौमुदी को अनार्ष ग्रन्थ घोषित किया। कौमुदी के पठन-पाठन को वे दुष्टता एवं पाप मानते थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आर्ष ग्रन्थ सार्वभौमिक सत्य का प्रतिपादन करते हैं और अनार्ष (मनुष्य कृत) ग्रन्थ भ्रमोत्पादक तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता से भरे